(2022) 13 एस. सी. आर. 342
सत्येन्द्र और हमारा।
वी.
सरोज और ओआरएस।
(2022 की सिविल अपील संख्या 4833)
17 अगस्त, 2022

{उदय उमेश ललित, एस. रवीन्द्र भाट और सुधांशु धूलिया, जे. जे.}

सिविल प्रकिया संहिता, 1908: आदेश VIII नियम 6 ए–प्रतिदावा–वादी (प्रत्यथी) कृषि भूमि पर घोषणा और आधिपत्य हेतु यह दावा करते हुए वाद संस्थित किया गया कि प्रतिवादी कमांक 2 जो कि उनका किराएदार था के द्वारा वादी की सहमति के बिना अपने पुत्र (प्रतिवादी कमांक 1) के पक्ष में उक्त संपत्ति की उप किराएदारी निर्मित की, इसीलिए निष्कासन के लिए उत्तरदायी है–प्रतिवादी कमांक 2 ने पृथक लिखित कथन प्रस्तुत कर वादी के किराएदार होने के दावे का खंडन किया–प्रतिवादी ने प्रतिदावा प्रस्तुत करते हुए वाद पत्र में दिए गए खसरा एवं किल्ला नंबर के अलावा दो अन्य किल्ला नंबर 6/18 एवं 23 पर स्वयं का आधिपत्य होने का दावा किया– विचारण न्यायालय ने वाद को खारिज किया लेकिन प्रतिदावे को स्वीकृत किया–वादी की प्रथम अपील भी खारिज की गई–उच्च न्यायालय द्वारा वादीगण की द्वितीय अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए प्लॉट नंबर 21/3/3 एवं 7/13 पर किए गए दावे को यह कह कर स्वीकार किया कि उक्त प्लॉटों पर वादी द्वारा किया गया दावा अविवादित रहा–उच्च न्यायालय ने यह भी पाया कि चूंकि वादी ने स्वयं उक्त प्लॉटों पर दावा नहीं किया इसीलिए प्रतिवादी द्वारा संस्थित प्रतिदावा डिक्री नहीं किया जा सकता था, और इसीलिए आदेश VIII नियम 6 ए के प्रावधान के अंतर्गत वादी के दावे से सरोकार न होने पर ऐसा स्वतंत्र प्रतिदावा कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता–प्रतिवादीगण के द्वारा यह अपील प्रस्तुत की गई– अभिनिर्धारित किल्ला नंबर 21/3/2 एवं 7/13 के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निष्कर्ष अनुचित था क्योंकि मात्र इस आधार पर की प्रतिवादी के द्वारा उस संपत्ति के संबंध में प्रतिदावा प्रस्तुत नहीं किया गया यथा तथ्यतः इसका यह अर्थ नहीं है कि वादी के पक्ष में डिक्री पारित की जाएगी, वाद को सिद्ध करने का प्रमाण का भार वादीगण पर था परंतु वह असफल रहे–उच्च न्यायालय द्वारा किल्ला नंबर 6/18 एवं 23 के संबंध में प्रतिवादीगण के प्रतिदावे पर दिया गया निष्कर्ष सही है और सी.पी.सी. के आदेश VIII नियम 6 ए की उचित व्याख्या पर आधारित है। चूंकि वादीगण ने कभी भी 6/18 या किल्ला नंबर 23 पर कोई दावा नहीं किया–प्रतिदावा ''वादीगण के दावे के खिलाफ'' ही प्रस्तुत किया जा सकता है–चूंकि किल्ला नंबर 6/8 एवं 23 पर वादीगण ने कोई दावा नहीं किया, इसीलिए सी.पी.सी. के आदेश VIII नियम 6 ए के आलोक में वादीगण के दावे से सरोकार न होने के कारण प्रतिवादीगण उक्त किल्ला नंबरों पर दावा करने से बाधित थे–उच्च न्यायालय द्वारा किल्ला नंबर 21/3/2 एवं 7/13पर वादीगण के दावे की सीमा तक पारित डिक्री के संबंध में निर्णय एवं आदेश अपास्त किया गया है।

सिविल प्रकिया संहिता, 1908: धारा 100–हरियाणा राज्य में, द्वितीय अपील के न्यायालय को विधि के सारवान प्रश्न का निर्माण करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि हरियाणा में पंजाब न्यायालय अधिनियम, 1918 लागू है न कि सी.पी.सी. की धारा 100–पंजाब न्यायालय अधिनियम, 1918– धारा 41।

अपील का निपटारा करते हुए, न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारितः 1. धारा 100 सी.पी.सी. की धारा 100 जो कि आज प्रभाव में है यह आदेशित करती है कि उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील मात्र विधि के सारवान प्रश्न पर ही की जा सकती है और ऐसी द्वितीय अपील में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा निर्मित किए गए विधि के सारवान प्रश्न पर ही सुनवाई की जानी है। द्वितीय अपील के बारे में आज प्रचलनशील यह प्रावधान सी.पी.सी. में संशोधन अधिनियम नंबर 104 सन् 1976 के द्वारा जोड़ा गया था। वर्ष 1976 के संशोधन से पूर्व विधि के सारवान प्रश्न की आवश्यक्ता नहीं थी।(पैरा 10) (350–एफ–जी)

2.1 आर्थिक रूप से इस न्यायालय के द्वारा यह प्रतिपादित किया गया था कि (कुलवंत कौर विरूद्ध गुरदयाल सिंह मान[3] में) यह प्रतिपादित किया है कि 1976 के संशोधन के उपरांत पंजाब एवं हरियाणा में सी.पी. सी की धारा 100 लागू होगी और पंजाब न्यायालय अधिनियम, 1918 लागू नहीं होगा एवं द्वितीय अपील को''विधि I के सारवान प्रश्न '' पर ही निराकृत किया जाएगा। यह प्रतिपादित किया गया कि वर्ष 1976 के संशोधन अधिनियम के बाद पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 41 का निरसन हो गया है। इसके अतिरिक्त यह भी प्रतिपादित किया गया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 294 के आलोक में पंजाब न्यायालय अधिनियम सी.पी. सी की धारा 100 से असंगत है। पंकजाक्षी (उपर्युक्त) के मामले में संविधान पीठ ने यह कहा कि कुलवंत कौर वाले मामले में पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 41 के निरसन के जो कारण दिए गए थे वह सही नहीं थे।

संशोधन अधिनियम 1976 की धारा 97 यह प्रावधान करती है कि मात्र वो ही प्रावधान निरसन होंगे जिन्हें मूल अधिनियम में राज्य विधायिका या उच्च न्यायालय के द्वारा इस अधिनियम (1976 संशोधन अधिनियम) के प्रारंभ से पूर्व जोड़ा गया था। चूंकि पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 41 न ही मूल अधिनियम में कोई संशोधन है एवं न ही उसे मूल अधिनियम में जोड़ा गया है। इसीलिए यह संशोधन अधिनियम 1976 की धारा 97 से प्रभावित नहीं होती है और इसीलिए उसके संशोधन अधिनियम 1976 की धारा 97 के प्रावधान के अंतर्गत निरसन का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। (पैरा 11, 12) (352–ए–बी, ई–एफ)

2.2 इसके आगे (पंकजाक्षी के मामले में) यह भी प्रतिपादित किया गया कि इसकी असंगतता और इसके लागू होने का प्रश्न भी कुलवंत कौर के मामले में उचित रूप से निर्णीत नहीं किया गया क्योंकि उस मामले में भारत के संविधान का अनुच्छेद 254 लागू नहीं होता था। अनुच्छेद 254 उन्हीं विधानों पर लागू होगा जो भारत के संविधान के कियान्वयन के बाद निर्मित किए गए और पंजाब न्यायालय अधिनियम 1918 की धारा 41 एक पुराना अधिनियम है जो भारत के संविधान के लागू होने के बाद राज्य की विधायिका के द्वारा नहीं बनाया गया है। पंजाब न्यायालय अधिनियम 1918 को भारत सरकार अधिनियम 1935 के प्रावधानों के अंतर्गत अधिनियमित किया गया था और यद्यपि भारत के संविधान के अनुच्छेद 395 के द्वारा भारत सरकार अधिनियम 1935 का निरसन कर दिया गया फिर भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 372(1) के आधार पर ऐसे सारे विधान जो संविधान के प्रारंभ से पूर्व भारत की क्षेत्रसीमा पर प्रभावशील थे को तब तक प्रभाव में रहना था जब तक उन्हें सक्षम विधायिका या किसी अन्य सक्षम प्राधिकरण के द्वारा बदला या निरसन या संशोधित न किया गया हो। चूंकि पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 41 को पंजाब या हरियाणा राज्य विधायिका के द्वारा बदला, निरसन या संशोधित नहीं किया गया है इसीलिए वह लागू रहेगी। (पैरा 13) (352–जी–एचः 353–ए–सी)

3. चूंकि हरियाणा उस समय पंजाब राज्य का भाग था इसीलिए सन 1918 में पंजाब में लागू होने वाली विधि हरियाणा में भी लागू होती थी। पश्चातवर्ती क्रम में नवीन हरियाणा राज्य के निर्मित होने पर भूतपूर्व पंजाब राज्य में तत्समय प्रवृत्त विधि पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 की धारा 88 के प्रावधान के अंतर्गत नवीन हरियाणा राज्य पर भी लागू होती थी। इसके साथ ही हरियाणा राज्य में पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 की धारा 89 के अधीन भूतपूर्व पंजाब राज्य में लागू विधि को औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया गया। इसीलिए हरियाणा राज्य में द्वितीय अपीलीय न्यायालय को पंजाब न्यायालय अधिनियम, 1918 की धारा 41 एवं सी.पी.सी की धारा 100 के अंतर्गत विधि के सारवान प्रश्न के निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है। परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय के लिए विधि के सारवान प्रश्न का निर्माण करना आवश्यक नहीं था। (पैरा 14)(353–सी–ई)

4. इन बातों के होते हुए भी, यद्यपि विधि के सारवान प्रश्न का निर्माण करना आवश्यक नहीं था, फिर भी पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 41 यह मांग करती है कि द्वितीय अपील में ऐसे ही निर्णयों पर विचार किया जाए जो विधि के अनुरूप नहीं है या किसी प्रथा या ऐसे रिवाज के विपरीत है जिसे विधि के समान मान्यता प्राप्त है या अधीनस्थ न्यायालय ने विधि के या किसी प्रथा या रिवाज जिसे विधि की मान्यता प्राप्त हो पर सारवान प्रश्न का निर्धारण करने में चूक की हो इसीलिए " विधि का प्रश्न" अभी भी महत्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में, द्वितीय अपील विचारण न्यायालय या अपीलीय न्यायालय द्वारा विनिश्चित तथ्यों के प्रश्नों को पुनः परीक्षण या पुनः विवेचन करने का मंच नहीं है। वादीगण ने कुछ कृषि भूमि पर अपना अधिकार होने का दावा किया था और उनका मामला इस प्रकार था कि उस संपत्ति पर प्रतिवादी और उसके हितप्रद उत्तराधिकारी वादीगण के किराएदार थे इसीलिए उस संपत्ति पर वादीगण को स्वत्व घोषणा और आधिपत्य की प्राप्ति का अधिकार था। उनका मामला इस प्रकार था कि उनके किराएदार प्रतिवादी क्रमांक 02 ने संपत्ति को अपने पुत्र अर्थात प्रतिवादी क्रमांक 01 को यद्यपि किराएदारी पर दे दिया था और इसीलिए वादीगण को उक्त संपत्ति वापस प्राप्त होनी चाहिए और उन्हें उस संपत्ति के स्वामित्व की घोषणा और आधिपत्य दिया जाना चाहिए। विचारण न्यायालय एवं प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों ने ही वादीगण की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य के विश्लेषण के उपरांत यह पाया। प्रतिवादी क्रमांक 02 और उसके भाई (जिन्हें वादीगण के द्वारा पक्षकार भी नहीं बनाया गया) उस संपत्ति के किराएदार थे और प्रतिवादी क्रमांक 02 ने संपत्ति को अपने पुत्र अर्थात प्रतिवादी क्रमांक 01 को उपकिराएदारी पर नहीं दिया था और चूंकि राजस्व अधिकरण के द्वारा राजस्व अभिलेख में ऐसी प्रविष्टि करने का कोई आदेश पारित नहीं किया गया था इसीलिए सन 1978 में जो राजस्व प्रविष्टियां इस संबंध में की गई थी वह बिना किसी आधार के की गई थी। संक्षेप में, वादीगण वादग्रस्त संपत्ति पर स्वयं का स्वामित्व साबित करने में असफल रहे थे इसीलिए उनका स्वत्व घोषणा और आधिपत्य का दावा खारिज किया गया। हालांकि द्वितीय अपील न्यायालय ने त्रुटिपूर्ण एवं बिना किसी उचित कारण के किल्ला नंबर 21/3/2 एवं 7/13 के बारे में पूर्ण रूप से नया निष्कर्ष दिया है। जिस पर वादीगण ने घोषणा और आधिपत्य के अनुतोष की मांग उन्हीं आधारों पर की थी जिन पर उन्होंने अन्य किल्ला नंबर के संबंध में अनुतोष की मांग की थी। अभिकथनों से ही यह दर्शित होता है कि प्रतिवादीगण के द्वारा सामान्य रूप से वादीगण के सभी प्लॉटों पर दावे का खंडन किया है। फिर भी, उच्च न्यायालय ने यह माना है कि चूंकि प्रतिवादीगण ने प्लॉट नंबर 21/3/2 एवं 7/13

का कोई दावा नहीं किया है इसलिए तर्क के अनुसार वादीगण को प्लॉटों के संबंध में आधिपत्य की डिकी (आज्ञप्ति) दी जानी चाहिए थी। द्वितीय अपीलीय कोर्ट द्वारा दिया गया यह कारण इसीलिए इस कारणवश त्रुटिपूर्ण है कि वाद को सिद्ध करने का भार वादीगण पर था जिसमें वह असफल रहे। वह वादग्रस्त संपत्ति पर अपने किसी भी प्रकार के दावे को विचारण न्यायालय एवं प्रथम अपीलीय न्यायालय के संतोष तक प्रमाणित करने में असफल रहे हैं सिर्फ इसलिए कि प्रतिवादी ने उस संपत्ति पर पूरा दावा प्रस्तुत नहीं किया है। यथा तथ्यतः उसका अर्थ यह नहीं है कि वादीगण के पक्ष में डिकी पारित की जानी चाहिए थी। वादीगण को स्वयं के साक्ष्य के दम पर अपना वाद सिद्ध करना होता है। इसी कारणवश द्वितीय अपीलीय न्यायालय द्वारा प्लॉट नंबर 21/3/2 एवं 7/13 के संबंध में वादी के दावे के पक्ष में पारित की गई डिकी का जो कारण दिया गया है वह गलत है और उक्त सीमा तक अपास्त किए जाने योग्य है। (पैरा 15)(353–एफ; 354–ए–एच ; 355–ए)

5. हालांकि द्वितीय अपीलीय न्यायालय का अन्य निष्कर्ष जो कि प्रतिवादीगण के किल्ला नंबर 16/18 एवं 23 पर किए गए प्रतिदावे से संबंधित है, सही है और सी.पी.सी. के आदेश 8, नियम 6ए की उचित व्याख्या पर आधारित है। वादी के द्वारा जिन भूखंडों का ब्यौरा दिया गया था उनका खंडन करने के साथ ही प्रतिवादीगण ने लिखित कथन में काफी सफलतापूर्वक किल्ला नंबर 6/18 एवं 23 को शामिल **करते हुए उस पर प्रतिदावा संस्थित किया है। विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वादीगण के वाद को निरस्त करते हुए प्रतिवादीगण के उक्त प्रतिदावे को बिना कोई कारण दिए स्वीकार कर लिया था। असल में प्रतिवादी के द्वारा जो यह प्रतिदावा प्रस्तुत किया गया था वह सी.पी.सी. के आदेश VIII नियम 6 एके अंतर्गत बाधित है। एक प्रतिदावा सिर्फ वादी द्वारा किए गए दावे के विरूद्ध ही किया जा सकता है।" चूंकि वादीगण का किल्ला नंबर 6/8 एवं 23 पर कोई दावा नहीं था, इसलिए सी.पी.सी. के आदेश VIII नियम 6 ए के आलोक में प्रतिवादीगण उन किल्ला नंबर पर प्रतिदावा संस्थित करने से बाधित थे क्योंकि उन किल्ला नंबर से वादीगण का कोई लेना देना नहीं था। यह सही है कि प्रतिवादी के द्वारा पृथक या स्वयं वाद हेतुक के बारे में प्रतिदावा किया जा सकता है। विधायिका वाद की बहुल्यता के निवारण हेतु प्रतिदावा संस्थित करने की अनुमति देती है परंतु उसकी अपनी सीमाएं हैं, जैसे कि प्रतिदावा न्यायालय की अधिकारिता की धन संबंधी सीमाओं से अधिक नहीं हो सकता और ऐसा प्रतिदावा प्रतिवादी के द्वारा स्वयं की प्रतिरक्षा परिदत्त करने के पूर्व या अपनी प्रतिरक्षा परिदत्त किए जाने के लिए परिसीमित समय काअवसान हो जाने के पूर्व संस्थित किया जाना चाहिए। इससे भी जरूरी बात यह है कि ऐसा प्रतिदावा वादी के विरूद्ध होना चाहिए! साफ तौर पर, हस्तगत प्रकरण में जो प्रतिदावे हैं वह वादीगण के विरूद्ध हीं था बल्कि, किल्ला नंबर 6/8 एवं 23 पर वादीगण ने स्वयं के अधिकार का कोई दावा नहीं किया था इसलिए वह वाद पत्र में उल्लेखित वादग्रस्त संपत्ति का भाग नहीं था। इन सबके उपरांत भी, ऐसे प्रतिदावे को वादी के विरूद्ध स्वीकार किया गया है। असल में, हमें अभिलेख पर प्रतिदावे के विरूद्ध वादी द्वारा प्रस्तुत किया गया कोई जवाब भी नहीं मिला है। सही कहा जाए तो, सी.पी.सी. के ऑर्डर 8 नियम 6सी के आलोक में ऐसा प्रतिदावा शामिल नहीं किया जाना चाहिए था। यहां इतना बोलना पर्याप्त है कि उच्च न्यायालय के द्वारा प्रतिवादीगण की ओर से प्रस्तुत प्रतिदावे को उचित रूप से निरस्त किया गया है।(पैरा16)(355–बी–सी, एच)**

न्यायालय का यह निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु धुलिया द्वारा सुनाया गया

1. यह अपील पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील (क्रमांक 140/2009) में पारित निर्णय दिनांक 19.07.2017 के विरूद्ध की गई है जिसमें द्वितीय अपील को उच्च न्यायालय द्वारा आंशिक रूप से स्वीकार किया गया है।

2. यह प्रकरण वादी (जिन्हें आगे प्रत्यर्थी के रूप में संबोधित किया जाएगा) द्वारा कृषि भूमि की स्वत्व घ ोषणा एवं आधिपत्य की सहायता हेतु संस्थित प्रकिया से उद्भूत हुआ है। वादी के द्वारा स्वयं को 80 कनाल, 19 मारला भूमि के स्वामी होने का दावा करते हुए वाद संस्थित किया गया था। यह संपत्ति राजस्व ग्राम गगरवास तहसील लोहारू जिला भिवाड़ी हरियाणा में स्थित है। वादी का मामला इस प्रकार था कि प्रतिवादी क्रमांक 02 वादी का किराएदार था जिसने वादी/ भूमि स्वामी की सहमति के बिना भूमि को अपने पुत्र (प्रतिवादी क्रमांक 01) को उप किराएदारी पर दे दिया था और इसीलिए वह दोनों प्रतिवादीगण वादग्रस्त भूमि से निस्काषित किए जाने के लिए उत्तरदायी थे और वादी को उसकी भूमि का आधिपत्य लौटाया जाना था। इसके अलावा वादी का वाद इस बिंदू पर भी आधारित था कि पूर्व में वादग्रस्त भूमि रामकौर के आधिपत्य में थी जिसके किराएदार प्रतिवादी क्रमांक 02 के पिता गणपत राय थे। गणपत राय ने विवादित संपत्ति पर स्वयं की किराएदारी को सन् 1976 में रामकौर के पक्ष में त्याग दिया था।इसके बाद सन् 1994 में वादी ने इस मामले की वादग्रस्त संपत्ति का वाद रामकौर के विरूद्ध जीत लिया था जिसके बाद से यह संपत्ति वादीगण के स्वामित्व की है। चूंकि उन्होंने रामकौर का स्थान ग्हण कर वादग्रस्त संपत्ति का स्वामित्व प्राप्त किया है।

3. प्रतिवादी क्रमांक 01 (सत्येन्द्र) प्रतिवादी क्रमांक 02 (ईश्वर सिंह) का पुत्र है। प्रतिवादी क्रमांक 01 ने यह अभिकथन किया था कि उसका वादग्रस्त भूमि से कोई लेना–देना नहीं था। उसके द्वारा यह प्रतिरक्षा ली गई थी कि उसका जन्म वर्ष 1966 में हुआ था और वर्ष 1978 में जब उसके पक्ष में कथित उप किराएदारी

निर्मित हुई थी उस समय वह मात्र 12 वर्ष का था। उसके द्वारा कभी भी उस भूमि पर कृषि कार्य नहीं किया गया। उसके पिता और दोनों चाचा के द्वारा विवादित भूमि पर कृषि कार्य किया जाता था और राजस्व अभिलेख में उसे विवादित जमीन का किराएदार या उपकिराएदार दर्शाते हुए जो प्रविष्टियां की हैं वह वादी के द्वारा राजस्व अधिकारियों के साथ सांठ–गांठ करके करवाई गई हैं जो कि गलत हैं।

4. प्रतिवादी कमांक 02 के द्वारा पृथक से लिखित कथन प्रस्तुत किए गए हैं। प्रतिवादी कमांक 02 के अनुसार संपत्ति का मूल स्वामी इंद्राज था जिसने उस संपत्ति को प्रतिवादी कमांक 02 के पिता गणपत राय को किराएदारी पर दिया था। सन् 1976 में इंद्राज की मृत्यु के उपरांत सुश्री रामकौर उनकी उत्तराधिकारी हुई।इसी बीच प्रतिवादी कमांक 02 के पिता गणपत राय का वर्ष 1978 में निधन हो गया जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी कमांक 02 और उसके दोनों भाईयों सोमवीर और ओम प्रकाश संयुक्त रूप से किराएदारी के उत्तराधिकारी बने। तदोपरांत वह तीनों भाई सुश्री रामकौर के किराएदार बन गए और वादग्रस्त संपत्ति के आधिपत्य में बने रहे। उन्होंने इस बात का खंडन किया है कि वे कभी भी वादीगण के किराएदार थे।

5. अपने लिखित कथन के अतिरिक्त प्रतिवादी कमांक 02 के द्वारा एक प्रतिदावा भी प्रस्तुत किया गया था। प्रतिवादी कमांक 02 ने लिखित कथन में दावा किया था कि वाद पत्र में जो खसरा नंबर और किल्ला नंबर दिए गए हैं उसके अलावा वह दो अन्य किल्ला नंबर 6/18 एवं 23 के भी आधिपत्य में हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो वादी के द्वारा जिन प्लॉट्स का दावा किया गया था प्रतिवादी कमांक 02 ने अपने प्रतिदावा में उसके अन्यथा उपर्युक्त दोनों प्लॉट कमांकों पर भी दावा किया था। अंततः विचारण न्यायालय के द्वारा यह पाया गया कि वादीगण न ही वादग्रस्त संपत्ति पर अपना अधिकार सिद्ध कर पाए और न ही यह सिद्ध कर पाए कि प्रतिवादी कमांक 02 ने अपने पुत्र अर्थात प्रतिवादी कमांक 01 के पक्ष में उप किराएदारी सृजित की है। प्रतिवादी कमांक 02 द्वारा प्रस्तुत प्रतिदावा डिक्री किया गया था और वादी का दावा खारिज किया गया।

6. अपीलीय न्यायालय के द्वारा वादी की ओर से प्रस्तुत प्रथम अपील को भी निरस्त किया गया। अपीलीय न्यायालय द्वारा भी यह कहा गया कि अपीलकर्ता के उपर पूर्ण रूप से यह सिद्ध करने का भारहै कि गणपत राय कि किराएदारी सन् 1976 में वादग्रस्त संपत्ति का आधिपत्य त्यागने से समाप्त हो चुकी थी। इस तथ्य को वादी साबित नहीं कर पाया। निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा यह भी निष्कर्ष दिया गया कि गणपत राय के निधन के उपरांत उसकी किराएदारी उसके तीनों पुत्रों सोमवीर, ईश्वर और ओमप्रकाश को विरासत में प्राप्त हुई।चूंकि वाद के निष्कर्ष का प्रभाव उन तीनों पर भी पड़ेगा इसीलिए उन तीनों को भी प्रकरण में पक्षकार के रंग–रूप में संयोजित किया जाना चाहिए था। चूंकि उन तीनों को पक्षकार के रूप में संयोजित नहीं किया गया है इसीलिए यह वाद आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण अनुचित है। प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा प्रतिदावे के बारे में यह निष्कर्ष दिया गया कि वाद के खारिज होने के प्राकृतिक परिणामस्वरूप प्रतिवादी द्वारा किला नंबर 6/18 एवं 23 को उचित रूप से डिक्री किया गया है।

7.वादीगण के द्वारा मामले की द्वितीय अपील की गई। द्वितीय अपील को आंशिक रूप से स्वीकार किया गया। यद्यपि उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील में दोनों न्यायालयों के द्वारा उप–किराएदारी और किराएदारी के संबंध में दिए गए निष्कर्षों को उचित ठहराया और निचली न्यायालयों के द्वारा प्रतिवादीगण के पक्ष में दिए गए निष्कर्षों को इस आधार पर उचित ठहराया कि विवादित संपत्ति की कोई उप–किराएदारी सृजित नहीं हुई थी। परंतु इसके साथ ही उच्च न्यायालय के द्वारा वादी के दोनों प्लॉट कमांक 21/3/2 एवं 7/13 पर किए गए दावों को इस कारण के साथ स्वीकार किया कि उक्त दोनों प्लॉट के संबंध में वादी ने जो दावा किया है उसके विरूद्ध प्रतिवादीगण के द्वारा कोई प्रतिदावा प्रस्तुत नहीं करने से वादी का दावा अविवादित रहा है।

8. इसके अलावा उच्च न्यायालय ने यह भी पाया कि प्रतिवादी द्वारा (प्लॉट नंबर 6/18 एवं 23) के संबंध में जो प्रतिदावा प्रस्तुत किया गया था उसे डिक्री नहीं किया जा सकता था क्योंकि स्वयं वादीगण ने दोनों प्लॉट्स अथार्त किल्ला नंबर 6/18 एवं 23 के संबंध में कोई दावा नहीं किया था और इसीलिए सिविल प्रकिया संहिता 1908 (जिसे आगे सी.पी.सी. के रूप में संबोधित किया जाएगा) के आदेश VIII नियम 6 ए के अंतर्गत ऐसे प्रतिदावे जिनका वादी से कोई सरोकार नहीं है को कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

9. प्रतिवादीगण अब इस न्यायालय के समक्ष आए हैं। अपीलार्थी/प्रतिवादी के अधिवकता की ओर से पहला आधार यह लिया गया है कि उच्च न्यायालय के द्वारा द्वितीय अपील निराकृत करते समय विधि का सारवान प्रश्न निर्मित नहीं किया गया, जो कि सी.पी.सी. की धारा 100 के अंतर्गत आवश्यक है। विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क हो सकता है कि द्वितीय अपील को विधि के सारवान प्रश्न पर ही सुना और स्वीकार किया जा सकता है और चूंकि विधि के सारवान प्रश्न को निर्मित नहीं किया गया एवं न ही द्वितीय अपीलीय न्यायालय (उच्च न्यायालय) के समक्ष पक्षकारों के द्वारा सी.पी.सी की धारा 100 के अंतर्गत वांछित तर्क नहीं किए गए, इसीलिए मात्र इस आधार पर भी उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है। यह सुंदर तर्क प्रकरण के तथ्यों को देखते हुए इस मामले में लागू नहीं होता है क्योंकि हस्तगत वाद की विषय–वस्तु हरियाणा में स्थित है। जहां पर ध ारा 100 सी.पी.सी. के प्रावधान लागू न होकर पंजाब न्यायालय अधिनियम, 1918 की धारा 41 के प्रावधान लागू

होते हैं। इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ के द्वारा यह **पंकजाक्षी एवं अन्य विरूद्ध चंद्रिका एवं अन्य**[1] के मामले में प्रतिपादित किया गया था जिसका बाद में **किरोड़ी विरूद्ध रामप्रकाश एवं अन्य**[2] में भी अनुसरण किया गया है।

10. सी.पी.सी. की धारा 100 जो कि आज प्रभाव में है यह आदेशित करती है कि उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील मात्र विधि के सारवान प्रश्न पर ही की जा सकती है और ऐसी द्वितीय अपील में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा निर्मित किए गए विधि के सारवान प्रश्न पर ही सुनवाई की जानी है। द्वितीय अपील के बारे में आज प्रचलनशील यह प्रावधान सी.पी.सी. में संशोधन अधिनियम नंबर 104 सन् 1976 के द्वारा जोड़ा गया था। वर्ष 1976 के संशोधन से पूर्व विधि के सारवान प्रश्न की आवश्यकता नहीं थी। संशोधन से पूर्व की स्थिति इस प्रकार थी–

''**100, द्वितीय अपील–**(1) ''उसके सिवाए जैसा इस संहिता के पाठ या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अभिव्यक्त रूप से उपबंधित है, उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी भी न्यायालय द्वारा अपील में पारित प्रत्येक डिक्री के खिलाफ उच्च न्यायालय में निम्न आधारों पर अपील की जाएगी, अर्थात–

(a) निर्णय केविधि से असंगत होने या विधि का प्रभाव रखने वाली किसी प्रथा या रिवाज से असंगत होने पर;

(b) निर्णय के विधि के किसी सारवान प्रश्न को या विधि का प्रभाव रखने वाली किसी प्रथा या रिवाज के सारवान प्रश्न को अवधारित करने में कुछ भौतिक मुददे को निर्धारित करने में विफल रहने पर;

(c) इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त लागू किसी विधि में दी गई प्रक्रिया में सारवान त्रुटि या दोष के कारण जिसमें उस प्रकरण के गुण–दोष पर आधारित निर्णय में संभवतः दोष या त्रुटि उत्पन्न की हो।

(2) इस धारा के अंतर्गत एकपक्षीय अपीलीय डिक्री के विरूद्ध भी अपील की जा सकती है।

पंजाब न्यायालय अधिनियम, 1918 के अंतर्गत द्वितीय अपील के संबंध में ऐसा ही एक प्रावधान किया गया है। यह प्रावधान धारा 41 में है जो कि सी.पी.सी की असंशोधित धारा 100 के समान है और इस प्रकार है कि–

''**41. द्वितीय अपील–**(1) उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी भी न्यायालय द्वारा अपील में पारित प्रत्येक डिक्री की अपील उच्च न्यायालय मे निम्न आधारों पर की जाएगी, अर्थात–

(a) निर्णय केविधि से असंगत होने या विधि का प्रभाव रखने वाली किसी प्रथा या रिवाज से असंगत होने पर;

(b) निर्णय के विधि के किसी सारवान प्रश्न को या विधि का प्रभाव रखने वाली किसी प्रथा या रिवाज के सारवान प्रश्न को अवधारित करने में कुछ भौतिक मुददे को निर्धारित करने में विफल रहने पर;

(c) इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त लागू किसी विधि में दी गई प्रक्रिया में सारवान त्रुटि या दोष के कारण जिसमें उस प्रकरण के गुण–दोष पर आधारित निर्णय में संभवतः दोष या त्रुटि उत्पन्न की हो।

{स्पष्टीकरण–इस धारा के अधीन किसी प्रथा या रिवाज के अस्तित्व या उचित होने के प्रश्न को विधि का प्रश्न माना जाएगा।}

(2) इस धारा के अंतर्गत एकपक्षीय अपीलीय डिक्री के विरूद्ध भी अपील की जा सकती है।

11.आर्थिक रूप सेइस न्यायालय के द्वारा यह प्रतिपादित किया गया था कि **(कुलवंत कौर विरूद्ध गुरदयाल सिंह मान[3] में)** यह प्रतिपादित किया है कि 1976 के संशोधन के उपरांत पंजाब एवं हरियाणा में सी.पी.सी की धारा 100 लागू होगी और पंजाब न्यायालय अधिनियम, 1918 लागू नहीं होगा एवं द्वितीय अपील को''विधि के सारवान प्रश्न'' पर ही निराकृत किया जाएगा। यह प्रतिपादित किया गया कि वर्ष 1976 के संशोधन अधिनियम के बाद पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 41 का निरसनहो गया है। इसके अतिरिक्त यह भी प्रतिपादित किया गया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 294 के आलोक में पंजाब न्यायालय अधिनियम सी.पी.सी की धारा 100 से असंगत है।

12. जैसा की उपर बताया गया है, वर्तमान सी.पी.सी की धारा 100 को संशोधन अधिनियम 1976 के द्वारा सी.पी.सी. में जोड़ा गया है। संशोधन अधिनियम 1976 की धारा 97 जिस पर इस न्यायालय ने **कुलवंत कौर** के मामले में निर्भर किया है यह कहती है कि–**''97.** निरसन और व्यावृत्तियॉ–इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व किसी राज्य विधायिका या उच्च न्यायालय द्वारा किया गया कोई संशोधन या मूल अधिनियम में जोड़ा गया कोई प्रावधान जहां तक ऐसा संशाधन या प्रावधान इस अधिनियम द्वारा संशोधित मूल अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप है के अलावा निरसन किया गया है।

पंकजाक्षी (उपर्युक्त) के मामले मेंसंविधान पीठ ने यह कहा कि **कुलवंत कौर** वाले मामले में पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 41 के निरसन के जो कारण दिए गए थे वह सही नहीं थे। संशोधन अधिनियम 1976 की धारा 97 यह प्रावधान करती है कि मात्र वो ही प्रावधान निरसन होंगे जिन्हें मूल अधिनियम में राज्य विधायिका या उच्च न्यायालय के द्वारा इस अधिनियम (1976 संशोधन अधिनियम) के प्रारंभ से पूर्व जोड़ा गया था। चूंकि पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 41 न ही मूल अधिनियम में कोई संशोधन है एवं न ही उसे मूल अधिनियम में जोड़ा गया है। इसीलिए यह संशोधन अधिनियम 1976 की धारा 97 से प्रभावित नहीं होती है और इसीलिए उसके संशोधन अधिनियम 1976 की धारा 97 के प्रावधान के अंतर्गत निरसन का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है।

13. इसके आगे (**पंकजाक्षी** के मामले में) यह भी प्रतिपादित किया गया कि इसकी असंगतता और इसके लागू होने का प्रश्न भी **कुलवंत कौर** के मामले में उचित रूप से निर्णीत नहीं किया गया क्योंकि उस मामले में भारत के संविधान का अनुच्छेद 254 लागू नहीं होता था। अनुच्छेद 254 उन्हीं विधानों पर लागू होगा जो भारत के संविधान के कियान्वयन के बाद निर्मित किए गए और पंजाब न्यायालय अधिनियम 1918 की धारा 41 एक पुराना अधिनियम है जो भारत के संविधान के लागू होने के बाद राज्य की विधायिका के द्वारा नहीं बनाया गया है। पंजाब न्यायालय अधिनियम 1918 को भारत सरकार अधिनियम 1935 के प्रावधानों के अंतर्गतअधिनियमितकिया गया था और यद्यपि भारत के संविधान के अनुच्छेद 395[4] के द्वारा भारत सरकार अधिनियम 1935 का निरसन कर दिया गया फिर भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 372(1)[5] के आधार पर ऐसे सारे विधान जो संविधान के प्रारंभ से पूर्व भारत की क्षेत्रसीमा पर प्रभावशील थे को तब तक प्रभाव में रहना था जब तक उन्हें सक्षम विधायिका या किसी अन्य सक्षम प्राधिकरण के द्वारा बदला या निरसन या संशोधित न किया गया हो। चूंकि पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 41 को पंजाब या हरियाणा राज्य विधायिका के द्वारा बदला, निरसन या संशोधित नहीं किया गया है इसीलिए वह लागू रहेगी।

14. यहां पर हम यह जोड़ सकते हैं कि वर्तमान में हमें हरियाणा राज्य के विधान से ही सरोकार है। चूंकि हरियाणा उस समय पंजाब राज्य का भाग था इसीलिए सन 1918 में पंजाब में लागू होने वाली विधि हरियाणा में भी लागू होती थी। पश्चातवर्ती कम में नवीन हरियाणा राज्य के निर्मित होने पर भूतपूर्व पंजाब राज्य में तत्समय प्रवृत्त विधि पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 की धारा 88 के प्रावधान के अंतर्गत नवीन हरियाणा राज्य पर भी लागू होती थी। इसके साथ ही हरियाणा राज्य में पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 की धारा 89 के अधीन भूतपूर्व पंजाब राज्य में लागू विधि को औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया गया। इसीलिए हरियाणा राज्य में द्वितीय अपीलीय न्यायालय को पंजाब न्यायालय अधिनियम, 1918 की धारा 41 एवं सी.पी.सी की धारा 100 के अंतर्गत विधि के सारवान प्रश्न के निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है। परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय के लिए विधि के सारवान प्रश्न का निर्माण करना आवश्यक नहीं था।

15. इन बातों के होते हुए भी, यद्यपि विधि के सारवान प्रश्न का निर्माण करना आवश्यक नहीं था, फिर भी पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 41 यह मांग करती है कि द्वितीय अपील में ऐसे ही निर्णयों पर विचार किया जाए जो विधि के अनुरूप नहीं है या किसी प्रथा या ऐसे रिवाज के विपरीत है जिसे विधि के समान मान्यता प्राप्त है या अधीनस्थ न्यायालय ने विधि के या किसी प्रथा या रिवाज जिसे विधि की मान्यता प्राप्त हो पर सारवान प्रश्न का निर्धारण करने में चूक की हो इसीलिए '' विधि का प्रश्न'' अभी भी महत्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में, द्वितीय अपील विचारण न्यायालय या अपीलीय न्यायालय द्वारा विनिश्चत तथ्यों के प्रश्नों को पुनः परीक्षण या पुनः विवेचन करने का मंच नहीं है। वादीगण ने कुछ कृषि भूमि पर अपना अधिकार होने का दावा किया था और उनका मामला इस प्रकार था कि उस संपत्ति पर प्रतिवादी और उसके हितप्रद उत्तराधिकारी वादीगण के किराएदार थे इसीलिए उस संपत्ति पर वादीगण को स्वत्व घोषणा और आधिपत्य की प्राप्ति का अधिकार था। उनका मामला इस प्रकार था कि उनके किराएदार प्रतिवादी कमांक 02 ने संपत्ति को अपने पुत्र अर्थात प्रतिवादी कमांक 01 को यद्यपि किराएदारी पर दे दिया था और इसीलिए वादीगण को उक्त संपत्ति वापस प्राप्त होनी चाहिए और उन्हें उस संपत्ति के स्वामित्व की घोषणा और आधिपत्य दिया जाना चाहिए। विचारण न्यायालय एवं प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों ने ही वादीगण की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य के विश्लेषण के उपरांत यह पाया। प्रतिवादी कमांक 02 और उसके भाई (जिन्हें वादीगण के द्वारा पक्षकार भी नहीं बनाया गया) उस संपत्ति के किराएदार थे और प्रतिवादी कमांक 02 ने संपत्ति को अपने पुत्र अर्थात प्रतिवादी कमांक 01 को उप–किराएदारी पर नहीं दिया था और चूंकि राजस्व अधिकरण के द्वारा राजस्व अभिलेख में ऐसी प्रविष्टि करने का कोई आदेश पारित नहीं किया गया था इसीलिए सन 1978 में जो राजस्व प्रविष्टियां इस संबंध में की गई थी वह बिना किसी आधार के की गई थी। संक्षेप में, वादीगण वादग्रस्त संपत्ति पर स्वयं का स्वामित्व साबित करने में असफल रहे थे इसीलिए उनका स्वत्व घोषणा और आधिपत्य का दावा खारिज किया गया। हालांकि द्वितीय अपील न्यायालय ने त्रुटिपूर्ण एवं बिना किसी उचित कारण के किल्ला नंबर 21/3/2 एवं 7/13 के बारे में पूर्ण रूप से नया निष्कर्ष दिया है। जिस पर वादीगण ने घोषणा और आधिपत्य के अनुतोष की मांग उन्हीं आधारों पर की थी जिन पर उन्होंने अन्य किल्ला नंबर के संबंध में अनुतोष की मांग की थी। अभिकथनों से ही यह दर्शित होता है कि प्रतिवादीगण के द्वारा सामान्य रूप से वादीगण के सभी प्लॉटों पर दावे का खंडन किया है। फिर भी, उच्च न्यायालय ने यह माना है कि चूंकि प्रतिवादीगण ने प्लॉट नंबर 21/3/2 एवं 7/13 का कोई दावा नहीं किया है इसलिए तर्कसंगत दृष्टि से वादीगण को प्लॉटों के संबंध में आधिपत्य की डिक्री (आज्ञप्ति) दी जानी चाहिए थी। द्वितीय अपीलीय कोर्ट द्वारा दिया गया यह कारण इसीलिए इस कारणवश त्रुटिपूर्ण है कि वाद को सिद्ध करने का भार वादीगण पर था जिसमें वह असफल रहे। वह वादग्रस्त संपत्ति पर अपने किसी भी प्रकार के दावे को विचारण न्यायालय एवं प्रथम अपीलीय न्यायालय के संतोष तक प्रमाणित करने में असफल रहे हैं सिर्फ इसलिए कि प्रतिवादी ने उस संपत्ति पर पूरा दावा प्रस्तुत नहीं किया है। यथा तथ्यतः उसका अर्थ यह नहीं है कि वादीगण के पक्ष में डिक्री पारित की जानी चाहिए थी। वादीगण को स्वयं के साक्ष्य के दम पर अपना वाद सिद्ध करना होता है। इसी कारणवश

द्वितीय अपीलीय न्यायालय द्वारा प्लॉट नंबर 21/3/2 एवं 7/13 के संबंध में वादी के दावे के पक्ष में पारित की गई डिक्री का जो कारण दिया गया है वह गलत है और उक्त सीमा तक अपास्त किए जाने योग्य है।

16. हालांकि द्वितीय अपीलीय न्यायालय का अन्य निष्कर्ष जो कि प्रतिवादीगण के किल्ला नंबर 16/18 एवं 23 पर किए गए प्रतिदावे से संबंधित है, सही है और सी.पी.सी. के आदेश VIII नियम 6 ए की उचित व्याख्या पर आधारित है। वादी के द्वारा जिन भूखंडों का ब्यौरा दिया गया था उनका खंडन करने के साथ ही प्रतिवादीगण ने लिखित कथन में काफी सफलतापूर्वक किल्ला नंबर 6/18 एवं 23 को शामिल करते हुए उस पर प्रतिदावा संस्थित किया है। विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वादीगण के वाद को निरस्त करते हुए प्रतिवादीगण के उक्त प्रतिदावे को बिना कोई कारण दिए स्वीकार कर लिया था। असल में प्रतिवादी के द्वारा जो यह प्रतिदावा प्रस्तुत किया गया था वह सी.पी.सी. के आदेश VIII नियम 6 ए के अंतर्गत बाधित है। आदेश VIII नियम 6 ए यह कहता है कि

> **(6ए. प्रतिवादी द्वारा दावा–**(1) वाद मे प्रतिवादी नियम 6 के अधीन मुजरा के अभिवचन के अपने अधिकार के अतिरिक्त वादी के दावे के विरूद्ध प्रतिदावे के रूप में किसी ऐसे अधिकार या दावे को, जो वादी के विरूद्ध प्रतिवादी को, वाद फाइल किए जाने के पूर्व या पश्चात किंतु प्रतिवादी द्वारा अपनी प्रतिरक्षा परिदत्त किए जाने के पूर्व या अपनी प्रतिरक्षा परिदत्त किए जाने के लिए परिसीमित समय का अवसान हो जाने के पूर्व, किसी वाद हेतुक के बारे में प्रोद्भूत हुआ हो, उठा सकेगा चाहे ऐसा प्रतिदावा नुकसानी के रूप में हो या नहीं:
>
> परंतु ऐसा प्रतिदावा न्यायालय की अधिकारिता की धन संबंधी सीमाओं से अधिक नहीं होगा।
>
> (2) ऐसे प्रतिदावे का प्रभाव प्रतिप्रवाद के प्रभाव के समान ही होगा जिससे न्यायालय एक ही बार में मूल दावे और प्रतिदावे दोनो के संबंध में अतिम निर्णय सुनाने के लिए समर्थ हो जाए।
>
> (3) वादी को इस बात की स्वतंत्रता होगी की वह प्रतिवादी के प्रतिदावे के उत्तर में लिखित कथन ऐसी अवधि के भीतर जो न्यायालय द्वारा नियत की जाए, फाइल करे।
>
> (4) प्रतिदावे को वाद पत्र के रुप में माना जाएगा और उसे वही नियम लागू होंगे जो वाद पत्रों को लागू होते हैं।''

एक प्रतिदावा सिर्फ वादी द्वारा किए गए दावे के विरूद्ध ही किया जा सकता है।'' चूंकि वादीगण का किल्ला नंबर 6/8 एवं 23 पर कोई दावा नहीं था, इसलिए सी.पी.सी. के आदेश नियम 6ए के आलोक में प्रतिवादीगण उन किल्ला नंबर पर प्रतिदावा संस्थित करने से बाधित थे क्योंकि उन किल्ला नंबर से वादीगण का कोई लेना देना नहीं था। यह सही है कि प्रतिवादी के द्वारा पृथक या स्वयं वाद हेतुक के बारे में प्रतिदावा किया जा सकता है। **(जगमोहन चावला एवं उनके विरूद्ध डेरा राधास्वामी सत्संग एवं अन्य[4])।**

विधायिका वाद की बहुल्यता के निवारण हेतु प्रतिदावा संस्थित करने की अनुमति देती है परंतु उसकी अपनी सीमाएं हैं, जैसे कि प्रतिदावा न्यायालय की अधिकारिता की धन संबंधी सीमाओं से अधिक नहीं हो सकता और ऐसा प्रतिदावा प्रतिवादी के द्वारा स्वयं की प्रतिरक्षा परिदत्त करने के पूर्व या अपनी प्रतिरक्षा परिदत्त किए जाने के लिए परिसीमित समय का अवसान हो जाने के पूर्व संस्थित किया जाना चाहिए। इससे भी जरूरी बात यह है कि ऐसा प्रतिदावा वादी के विरूद्ध होना चाहिए! साफ तौर पर, हस्तगत प्रकरण में जो प्रतिदावे हैं वह वादीगण के विरूद्ध हीं था बल्कि, किल्ला नंबर 6/8 एवं 23 पर वादीगण ने स्वयं के अधिकार का कोई दावा नहीं किया था इसलिए वह वाद पत्र में उल्लेखित वादग्रस्त संपत्ति का भाग नहीं था। इन सबके उपरांत भी, ऐसे प्रतिदावे को वादी के विरूद्ध स्वीकार किया गया है। असल में, हमें अभिलेख पर प्रतिदावे के विरूद्ध वादी द्वारा प्रस्तुत किया गया कोई जवाब भी नहीं मिला है। सही कहा जाए तो, सी.पी.सी. के ऑर्डर 8 नियम 6सी के आलोक में ऐसा प्रतिदावा शामिल नहीं किया जाना चाहिए था। यहां इतना बोलना पर्याप्त है कि उच्च न्यायालय के द्वारा प्रतिवादीगण की ओर से प्रस्तुत प्रतिदावे को उचित रूप से निरस्त किया गया है।

17. उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 19.07.17 को पारित निर्णय एवं आदेश को वादी के पक्ष में किल्ला नंबर 21/3/2 एवं 7/13 किए गए दावे के पक्ष में की गई डिक्री को अपास्त किया जाता है। अतः उक्त आधारों पर यह अपील निराकृत की जाती है।

---

[1](2016) 6 **SCC** 157

[2](2019) 11 **SCC** 317

[3](2001) 4 **SCC** 262

4. Article 395- Repeals The indians Independence Act, 1947,and the Government of india Act, 1935, together with all enactments amending or supplementing the letter Act, but not including the Abolition of Privy Council Jurisdiction Act, 1949, are hereby repealed.

5. 372(1) Notwithstanding the repeal by this Constitution of the enactments referred to in Article 395 but subject to the other provisions of this Constitution, all the laws in force in the territory of India immediatelybrfore the commencement of this Constitution, shall continue in force therein until altered or repealed or amended by a competent Legislature or other competent authority

[6](1996) 4**SCC**699

(श्रीमती शुभांगी पालो दत्त)